एम.एम. से पहले कुमार, जे

एमएस मोनिका बिबली सूद,-याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती कमल सेठ और अन्य,-प्रतिवादी सी.आर. नं. 2004 का 1414

18 मार्च 2004

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-एस.एस.10 और 151-भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925-धारा 372-एफ.डी.आर. में हिस्सेदारी और बैंक में लॉकर के संबंध में विवाद-पक्षकारों के बीच लंबित सिविल मुकदमा-उत्तराधिकार की कार्यवाही की शुरूआत-मुकदद्मे के और उत्तराधिकार के पक्षकार समान है - दोनों मामलों में समान मुद्दे तय किए गए हैं - क्या उत्तराधिकार की कार्यवाही पर रोक लगाई जाएगी - आयोजित की जाएगी, नहीं - 1925 अधिनियम की धारा 372 द्वारा विचार की गई कार्यवाही सारांश कार्यवाही है - एक नियमित मुकदमे में कार्यवाही और सारांश कार्यवाही पूरी तरह से अलग है- संहिता की धारा 10 सारांश कार्यवाही पर लागू नहीं होती - याचिका खारिज की जा सकती है।

माना गया कि एक नियमित मुकदमे में कार्यवाही और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 372 द्वारा विचारित सारांश प्रकृति की कार्यवाही पूरी तरह से अलग हैं और बाद की कार्यवाही संहिता की धारा 10 के अंतर्गत कवर नहीं की जाएगी। प्रमाणपत्र जारी करने का उद्देश्य और उसका प्रभाव पूरी तरह से अलग है जिसके परिणामस्वरूप पार्टियों के बीच मुद्दे का अंतिम निर्णय नहीं हो पाएगा। इसलिए, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है और याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

याचिकाकर्ता के वकील रंजन लोहान।

(पैरा 7)

निर्णय

एम.एम. कुमार, जे.

(1) इस मामले में शामिल संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 10 (संक्षिप्तता के लिए, संहिता) भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (संक्षिप्तता के लिए अधिनियम) की धारा 372 के तहत उत्तराधिकार प्रमाण प्राप्त करने के लिए शुरू की गई कार्यवाही पर लागू होती है ।

2) मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता के उत्तराधिकारी परमजीत कुमार को सिविल में प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया था

1996 का मुकदमा संख्या 313 8 सितंबर 1995 को दायर किया गया, जिसमें इस आशय की घोषणा की मांग की गई कि वह इसके एफडीआर में 30,000 ओह 50,000 रुपया और लॉकर स्टेट बैंक ऑफ़ पटियाला सेक्टर 22 में अपने हिस्से का हकदार था। प्रतिवादी-प्रतिवादी क्रमांक 1 श्रीमती कमल सेठ ने नहीं मुकदमा लड़ा और उस पर एकपक्षीय कार्यवाही की गई। हालाँकि, उसने धारा 372 के तहत 17/30 अप्रैल, 1998 को उत्तराधिकार का मामला दायर किया।

ऊपर उल्लिखित समान एफडीआर और लॉकर के संबंध में उत्तराधिकार प्रमाणपत्र जारी करने के लिए उत्तराधिकार का मामला दायर किया ।उत्तराधिकारी हितैषी

याचिकाकर्ता ने मुकदमे के साथ-साथ उत्तराधिकार का मामला भी लड़ा। दोनों कार्यवाही में मुद्दे एक जैसे, पक्ष एक जैसे और राहत भी एक जैसी दोनों मामलों में दावा भी एक ही है यानी एफडीआर और लॉकर में पार्टियों के संबंधित शेयर। उस आधार पर याचिकाकर्ता ने सिविल मुकदमे के लंबित रहने के दौरान उत्तराधिकार मामले की सुनवाई/कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए संहिता की धारा 151 के साथ पठित धारा 10 के तहत एक आवेदन दायर किया। सिविल जज ने निम्नलिखित आदेश दर्ज कर आवेदन खारिज कर दिया है:-

'धारा 10 में निहित निषेध का उद्देश्य समवर्ती क्षेत्राधिकार के न्यायालयों को एक साथ दो समानांतर मुकदमों की सुनवाई करने से रोकना है और साथ ही मुद्दे में मामलों पर लगातार निष्कर्षों से बचना है' और वादी को लंबित रहने के दौरान बाद में मुकदमा दायर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। “

लेकिन वर्तमान आवेदन दायर करके आवेदक/याचिकाकर्ता उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए आवेदन याचिका की कार्यवाही पर रोक लगाना चाहता है। प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा "सुदर्शन राम भसीन बनाम कमला भसीन" शीर्षक पर भरोसा दिया गया है, जिसे 2002 (1) आरसीआर (सिविल) 510 (दिल्ली उच्च न्यायालय) के रूप में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि भारतीय प्रावधानों के तहत कार्यवाही की जाएगी। उत्तराधिकार अधिनियम उक्त न्यायालय के समक्ष एक वसीयतनामा की संक्षिप्त कार्यवाही है और उक्त कार्यवाही से निपटने के दौरान उक्त न्यायालय एक सिविल न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है जैसा कि यह एक सिविल मुकदमे का फैसला करते समय करता है।

एक सिविल मुकदमे का दायरा और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के तहत कार्यवाही काफी अलग है और इसलिए, कार्यवाही और मुकदमे में प्रश्न की समानता भारतीय उत्तराधिकार के प्रावधानों के तहत कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए एक वैध आधार प्रतीत नहीं होती है। मृतक

बख्शी राम भसीन के साथ प्रतिवादी के विवाह के बारे में विवादित प्रश्न पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के तहत कार्यवाही का निपटारा करते समय वसीयतनामा न्यायालय का निष्कर्ष सिविल न्यायालय को बाध्य नहीं करेगा और विभाजन के मुक़दमे में न्यायालय गुण-दोष के आधार पर इसे वापस करने का हकदार होगा।

(3) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री रंजन लोहान ने तर्क दिया है कि 1996 के सिविल सूट संख्या 313 में शामिल विवाद उन्हीं एफडीआर और लॉकरों के संबंध में है जो स्टेट बैंक ऑफ पटियाला, सेक्टर में पड़े/रखे हुए हैं। 22, चंडीगढ़. उन्होंने आगे कहा है कि मुकदमे के साथ-साथ उत्तराधिकार मामले के पक्ष समान हैं और यहां तक कि सिविल मुकदमे के साथ-साथ उत्तराधिकार मामले में तय किए गए मुद्दे भी समान हैं। उपर्युक्त प्रस्तुतीकरण के आधार पर, विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि संहिता की धारा 10 लागू होगी और 1998 के उत्तराधिकार मामले संख्या 17 को बाद में दायर करके शुरू की गई कार्यवाही पर रोक लगाई जानी तय है।

(4) विद्वान वकील को सुनने और विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश का अवलोकन करने के बाद, मेरा मानना है कि संहिता की धारा 10 द्वारा विचारित कार्यवाही नियमित परीक्षण की प्रकृति में है और इसमें वे कार्यवाही शामिल नहीं होंगी जो कि हैं प्रकृति में सारांश. उपरोक्त प्रश्न पर सुप्रीम कोर्ट ने इंडियन बैंक बनाम महाराष्ट्र स्टेट को-ऑपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन लिमिटेड (1) के मामले में विचार किया है। उस मामले में संहिता के आदेश 37 के तहत एक मुकदमा दायर किया गया था और सुप्रीम कोर्ट ने माना था कि बचाव के लिए अनुमति दिए जाने तक कार्यवाही संक्षिप्त रहेगी और संहिता की धारा 10 के अंतर्गत नहीं आएगी। हालाँकि, बचाव की अनुमति दिए जाने के बाद, कार्यवाही धारा 10 द्वारा विचारित मुकदमे की प्रकृति में हो सकती है। इस संबंध में उनके आधिपत्य का अवलोकन इस प्रकार है: -

8. इसलिए, धारा 10 में "मुकदमा" शब्द की व्याख्या और अर्थ उस प्रावधान के उद्देश्य और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और किसी भी मुकदमे के मुकदमे के साथ आगे बढ़ने पर रोक लगानी होगी जिसमें विवाद का मामला भी सीधे या पहले से स्थापित मुकदमे में काफी हद तक मुद्दा है। धारा 10 में निहित निषेध का उद्देश्य समवर्ती क्षेत्राधिकार के न्यायालयों को एक साथ दो समानांतर मुकदमों की सुनवाई करने से रोकना है और साथ ही संबंधित मामलों पर असंगत निष्कर्षों से बचना है। प्रावधान प्रक्रिया के नियम की प्रकृति में है और बाद के मुकदमे पर विचार करने और उससे निपटने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित नहीं करता है और न ही यह मामलों में कोई वास्तविक अधिकार बनाता है। यह किसी मुकदमे को शुरू करने में कोई बाधा नहीं है। न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि यह अंतरिम आदेशों को पारित करने में बाधा नहीं है, जैसे कि बाद के मुकदमे को पहले के मुकदमे के साथ मिलाने का आदेश, या रिसीवर की नियुक्ति या फैसले से पहले निषेधाज्ञा या कुर्की। धारा 10 के अनुसार न्यायालय को जिस कार्यवाही का पालन करना है, वह मुकदमे की सुनवाई के साथ आगे बढ़ना नहीं है, लेकिन

1) एआईआर 1998 एस.सी. 1952.

इसका मतलब यह नहीं है कि वह बाद के मुकदमे को अब या किसी अन्य उद्देश्य से नहीं निपटा सकता है। प्रावधान के उद्देश्य और प्रकृति और अंतर्वर्ती आदेशों को पारित करने के संबंध में काफी हद तक तय कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह कहा जाना चाहिए कि धारा 10 में "परीक्षण" शब्द का व्यापक अर्थ में उपयोग नहीं किया गया है। 9. धारा 10 में निहित प्रावधान सभी श्रेणियों के मामलों पर लागू एक सामान्य प्रावधान है। आदेश 37 में निहित प्रावधान कुछ वर्गों के मुकदमों पर लागू होते हैं। एक मुकदमे की सुनवाई आगे बढ़ाने पर रोक लगाता है, दूसरा त्वरित राहत देने का प्रावधान करता है। इन दोनों प्रावधानों की सामंजस्यपूर्ण ढंग से व्याख्या की जानी चाहिए ताकि दोनों के उद्देश्य कुंठित न हों। यह सही दृष्टिकोण है और जैसा कि इस अपील में विचार के लिए प्रश्न उठा है

क्या संहिता की धारा 10 में निहित बाद में स्थापित मुकदमे के साथ आगे बढ़ने पर रोक संहिता के आदेश 37 के तहत दायर सारांश मुकदमे पर लागू होती है, किसी भी मुकदमे के परीक्षण शब्द को संहिता के आदेश 37 मेरे प्रावधानों के संदर्भ में समझना होगा ।

आदेश 37 का नियम 2 वादी को कुछ मामलों में सारांश वाद दायर करने में सक्षम बनाता है। इस तरह का मुकदमा दायर होने पर प्रतिवादी को निर्धारित प्रपत्र में वादपत्र की एक प्रति और सम्मन की तामील की जानी आवश्यक है। सेवा के 10 दिनों के भीतर प्रतिवादी को उपस्थित होना होगा। निर्धारित समय के भीतर प्रतिवादी को मुकदमे की रक्षा के लिए छुट्टी के लिए आवेदन करना होगा और बचाव की अनुमति उसे बिना शर्त या ऐसी शर्तों पर दी जा सकती है जो अदालत या न्यायाधीश को उचित लगे। यदि प्रतिवादी ने बचाव की अनुमति के लिए आवेदन नहीं किया है, या यदि ऐसा कोई आवेदन किया गया है और अस्वीकार कर दिया गया है, तो वादी तुरंत निर्णय का हकदार हो जाता है। जिन शर्तों पर अनुमति दी गई थी यदि प्रतिवादी द्वारा उनका अनुपालन नहीं किया जाता है तो वादी भी इसका हकदार हो जाता है

तुरंत निर्णय. आदेश 37 के उप-नियम (7) में प्रावधान है कि उस आदेश में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर सारांश मुकदमों में प्रक्रिया सामान्य तरीके से शुरू किए गए मुकदमों की प्रक्रिया के समान होगी। इस प्रकार मुकदमों की श्रेणियों में जहां उन्हें तय करने के लिए सारांश प्रक्रिया अपनाने की अनुमति है, प्रतिवादी को समन की सेवा के 10 दिनों के भीतर उपस्थिति दर्ज करनी होगी और मुकदमे की रक्षा के लिए छुट्टी के लिए आवेदन करना होगा। यदि प्रतिवादी आवश्यकतानुसार अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करता है या छुट्टी प्राप्त करने में विफल रहता है तो वादपत्र में लगाए गए आरोपों को स्वीकार कर लिया गया माना जाएगा और सीधे वादी के पक्ष में डिक्री पारित की जा सकती है। प्रतिवादी द्वारा छुट्टी प्राप्त करने के बाद ही मामले के निर्धारण का चरण सारांश वाद में उत्पन्न होगा। मुकदमा वास्तव में प्रतिवादी को छुट्टी दिए जाने के बाद

ही शुरू होगा। यह स्पष्ट रूप से संहिता के आदेश 37 द्वारा प्रदान की गई सारांश प्रक्रिया की योजना प्रतीत होती है।

10. दोनों प्रावधानों, यानी धारा 10 और आदेश 37 के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, "परीक्षण" शब्द की व्यापक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। हमारी राय है कि सारांश मुकदमे के संदर्भ में धारा 10 में "परीक्षण" शब्द की व्याख्या एक वाद दायर करके मुकदमे की स्थापना से शुरू होने वाली संपूर्ण कार्यवाही के रूप में नहीं की जा सकती है। सारांश मुकदमे में "मुकदमा" वास्तव में तब शुरू होता है जब अदालत या न्यायाधीश प्रतिवादी को मुकदमा लड़ने की अनुमति दे देते हैं। इसलिए, सारांश मुकदमे से निपटने वाला न्यायालय या न्यायाधीश निर्णय के लिए सम्मन की सुनवाई के चरण तक आगे बढ़ सकता है और वादी के पक्ष में निर्णय पारित कर सकता है यदि (ए) प्रतिवादी ने बचाव के लिए छुट्टी के लिए आवेदन नहीं किया है या यदि ऐसा आवेदन है बनाया गया है और इनकार कर दिया गया है (बी) या यदि प्रतिवादी जिसे बचाव की अनुमति दी गई है वह उन शर्तों का पालन करने में विफल रहता है जिन पर बचाव की अनुमति दी गई है।

(5) मेरे सामने उठाए गए प्रश्न का उत्तर सुदर्शन राम भसीन बनाम कमला भसीन के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले से मिलता प्रतीत होता है, (2) यह मानते हुए कि एक नागरिक मुकदमे का दायरा और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के तहत शुरू की गई कार्यवाही काफी अलग है. इस संबंध में उनके आधिपत्य का अवलोकन इस प्रकार है:-

“एक सिविल मुकदमे का दायरा और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के तहत कार्यवाही काफी अलग है और इसलिए, कार्यवाही और मुकदमे में प्रश्न की समानता के प्रावधानों के तहत कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए एक वैध आधार प्रतीत नहीं होता है।” भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम. मृतक बख्शी राम भसीन के साथ प्रतिवादी के विवाह के बारे में विवादित प्रश्न पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के तहत कार्यवाही का निपटान करते समय वसीयतनामा न्यायालय का निष्कर्ष सिविल न्यायालय के लिए बाध्य नहीं होगा और सिविल न्यायालय अपने स्वयं के निष्कर्ष के आधार पर वापस लौटने का हकदार होगा। विभाजन के मुकदमे में मामले के गुण-दोष के आधार पर।”

6) सर्वोच्च न्यायालय का एक और निर्णय जहां उत्तराधिकार प्रमाण पत्र जारी करने की कार्यवाही के संबंध में प्रश्न यह तर्क देने के लिए उठाया गया था कि इसके परिणामस्वरूप पुनरावलोकन का सिद्धांत लागू होगा।

संहिता की धारा 11 के तहत न्याय भी प्रासंगिक होगा। माधवी अम्मा भवानी अम्मा और अन्य के मामले में। बनाम कुंजिकुट्टी पिल्लई मीनाक्षी स्तंभ और अन्य, (3) उपरोक्त प्रश्न उठाया गया था और इसका उत्तर यह मानते हुए दिया गया है कि अधिनियम के भाग X का संदर्भ देकर पुनर्न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होगा, उनके आधिपत्य ने निम्नानुसार देखा है: –

14. तो, यह प्रमाणपत्र केवल देनदार को उस भुगतान के लिए पूर्ण क्षतिपूर्ति प्रदान करता है जो वह ऐसे प्रमाणपत्र रखने वाले व्यक्ति को करता है। इस प्रकार जब ऋणी ऐसे प्रमाणपत्र धारक को प्रमाणपत्र में निर्दिष्ट ऋण या प्रतिभूतियों का भुगतान करता है, तो ऐसे भुगतान पर, वह किसी और को भुगतान करने के अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है क्योंकि इससे उसके दायित्व का हिस्सा निर्णायक रूप से समाप्त हो जाता है और ऐसा भुगतान अच्छे विश्वास में किया गया माना जाता है। यह ऐसे देनदार या भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति की सुरक्षा करता है ताकि उसे बाद में किसी भी मुकदमे में न घसीटा जा सके जो बाद में दावेदारों के बीच उत्पन्न हो सकता है। धारा 381 में "सद्भावना" शब्दों का प्रयोग इस बात को पुष्ट करता है कि इन कार्यवाहियों में निर्णय अंतिम नहीं है। जब क़ानून इस तरह के भुगतान को अच्छे विश्वास में मानता है तो वर्तमान संदेश के तहत यह स्पष्ट हो जाता है कि भविष्य में बेहतर दावेदार हो सकते हैं लेकिन इससे देनदार की क्षतिपूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस प्रकार हम संचयी रूप से पाते हैं क्योंकि उत्तराधिकार प्रमाणपत्र का अनुदान एक सीमित उद्देश्य के लिए, अपने क्षेत्र में सीमित होने के कारण, शीर्षक की घोषणा प्रथम दृष्टया, किए गए भुगतान को अच्छे विश्वास में किया गया घोषित किया जाता है, जिससे केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि कोई भी निर्णय लिया गया उसमें पार्टियों के अधिकारों का अंतिम निर्णय नहीं माना जा सकता, सिवाय इसके कि ऐसी घोषणा इन कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए अंतिम हो। यदि ऐसा है, तो ऐसे प्रमाण पत्र के धारक द्वारा प्राप्त राशि पर अभी भी सवाल उठाया जा सकता है, और बाद की कार्यवाही में यह इसे प्रतिस्पर्धी पार्टी सहित अन्य दावेदारों से संबंधित मान सकता है।

15. इसकी जांच दूसरे एंगल से भी की जा सकती है. उत्तराधिकार प्रमाणपत्र का अनुदान उपरोक्त अधिनियम के भाग X के अंतर्गत आता है। इसकी सीमा धारा 370 से 390 के बीच है। यहां धारा 387 का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है। यह इस अधिनियम के तहत किए गए निर्णयों के प्रभाव और ऐसे प्रमाणपत्र के धारक के दायित्व की घोषणा करता है। इसमें कहा गया है कि इस भाग (भाग X) के तहत पार्टियों के बीच अधिकार के किसी भी प्रश्न पर किया गया कोई भी निर्णय उसी प्रश्न के परीक्षण पर रोक नहीं लगाएगा।

समान पक्षों के बीच कोई मुकदमा या अन्य कार्यवाही। यह आगे दर्ज करता है कि इस भाग में कुछ भी अर्थ नहीं लगाया जाएगा

2) 2002 (1) आरसीआर (सिविल) 510

(3) जेटी 2000 (5) एस.सी. 336

इसमें यह भी दर्ज किया गया है कि इस हिस्से में किसी भी बात का किसी ऐसे व्यक्ति के दायित्व पर प्रभाव नहीं पड़ेगा जो किसी भी ऋण या सुरक्षा का पूरा या कुछ हिस्सा कानूनी रूप से उसके हकदार व्यक्ति को दे सकता है। धारा 387 यहाँ उद्धृत है:-

"धारा 387:

इस अधिनियम के तहत निर्णयों का प्रभाव, और इसके तहत प्रमाण पत्र धारक का दायित्व: किसी भी पक्ष के बीच अधिकार के किसी भी प्रश्न पर इस भाग के तहत कोई भी निर्णय किसी भी मुकदमे में या उसी के बीच किसी अन्य कार्यवाही में एक ही प्रश्न के परीक्षण को रोकने के लिए नहीं होगा। पार्टियों, और इस भाग में किसी भी बात का किसी ऐसे व्यक्ति के दायित्व पर प्रभाव नहीं पड़ेगा जो किसी भी ऋण या सुरक्षा या किसी भी सुरक्षा पर कोई ब्याज या लाभांश प्राप्त कर सकता है, जिसका हिसाब कानूनी तौर पर उसके हकदार व्यक्ति को देना होगा।

(जोर दिया गया)

16. यह संदेह के लिए कोई जगह नहीं छोड़ता है। इस अधिनियम के भाग X के तहत किया गया निर्णय, जिसमें धारा 373 शामिल है, किसी भी बाद के मुकदमे या कार्यवाही में समान पक्षों के बीच समान प्रश्न उठाने पर रोक नहीं लगाता है। यह प्रावधान अधिनियम के भाग X के तहत स्पष्टीकरण VIII से धारा 11 के दायरे से बाहर निर्णय लेता है। यह बाद के मुकदमे या कार्यवाही में उठाए जाने वाले उसी मुद्दे को पुनर्निर्णय की किरणों से बचाने के लिए सुरक्षात्मक छतरी देता है।

(7) मिसाल के साथ-साथ सिद्धांत के आधार पर, यह स्पष्ट हो गया है कि एक नियमित मुकदमे में कार्यवाही और अधिनियम की धारा 372 द्वारा विचार की गई सारांश प्रकृति की कार्यवाही पूरी तरह से अलग हैं और बाद की कार्यवाही नहीं होगी अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत कवर किया जाएगा। प्रमाणपत्र जारी करने का उद्देश्य और उसका प्रभाव पूरी तरह से अलग है जिसके परिणामस्वरूप पार्टियों के बीच मुद्दे का अंतिम निर्णय नहीं हो पाएगा। इसलिए, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है और याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

(8) ऊपर दर्ज कारणों से, यह याचिका विफल हो जाती है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया

जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

जसमीत कौर

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(TraineeJudicial Officer)

कैथल, हरियाणा

आर.एन.आर.